10

वरुणसूक्त

प्रस्तावना

ईश्वर द्वारा प्रदत्त नि:श्वरभूत वेद अपौरुषेय और अनादि है। यही वेद मानव का सनातन दिव्यचक्षु है। ईश्वर भी वेद के आधार पर ही जगत् की सृष्टि करता है। संस्कृतसाहित्य में वेद ही सर्वोच्च स्थित सूर्य के समान है। भारत में धर्म व्यवस्था वेद पर ही आधारित है। वेद धर्मनिरूपण में स्वतन्त्रभाव से प्रमाण, स्मृत्यादि वेदमूलक ही हैं। अत एव श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति ही बलवान है। न केवल धर्ममूलकता से ही वेद आदरणीय है, अपितु विश्व के सर्वप्राचीनग्रन्थ होने से भी। प्राचीन धर्म, समाज, व्यवहार जैसी चीजों की जानकारी के लिए श्रुति ही सक्षम है। ''विद्यन्ते धर्मादय: पुरुषार्था: यै: ते वेदा:'' इति। सायण ने तो ''अपौरुषेयं वाक्यं वेद:'' ऐसा भी कहा है। इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के लिए अलौकिक उपाय जो बताता है वह वेद है। तत्र कारिका-

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥'' इति।

वेद चार है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। वहां ऋग्वेद के देवताओं में वरुण का स्थान अतीव महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि सम्पूर्ण ऋग्वेद में द्वादशसूक्तियों से वरुण की स्तुति की गई है, और यदि की भी है इन्द्र को छोड़कर अन्यकोई देव वरुण से बढ़कर नहीं है। वरुणशब्द आवरणार्थक वृ-धातु से निष्पन्न है। आवरकरूप से ही वैदिकदेवों में वह महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेदीय सूक्त का शुन:शेप ऋषि, वरुण देवता, गायत्री छन्द है। यह सूक्त प्रथममण्डल का पच्चीसवां (25वां) सूक्त है। (ऋ.वे. म-1.25)।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे -

टिप्पणी

- वरुणसूक्त को जान पाने में;
- वरुण के स्वरूप को जान पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक और लौकिक को जान पाने में;
- स्वयं भी मन्त्र व्याख्या कर पाने में;
- स्वयं भी मन्त्र का अन्वयादि भी करने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में।

11.1 मूलपाठ

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि॥1॥

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे॥2॥

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि॥3॥

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये। वयो न वसतीरुप॥4॥

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षसम्॥5॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे॥6॥

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥7॥

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥8॥

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते॥9॥

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या3स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥10॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा॥11॥

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत्॥12॥

बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्तनिर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे॥13॥

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः॥14॥

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा॥15॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥16॥

टिप्पणी

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम्॥17॥

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः॥18॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके॥19॥

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि॥20॥

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे॥21॥

1.1.1 व्याख्या

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यविद्यवि॥1॥

पदपाठः- यत्। चित्। हि। ते। विशः। यथा। प्र। देव। वरुण। व्रतम्॥
मिनीमसि। द्यविऽद्यवि॥

अन्वय- वरुण देव! यथा विशः ते व्रतं यत् चित् हि द्यविद्यवि प्रमिनीमसी।

व्याख्या- हे वरुण देव आप जैसे लोक में राजा या मनुष्य के प्रजा या सन्तान आदि प्रतिदिन अपराध करते हैं, किन्ही कामों को नष्ट कर देते हैं, वह उन पर न्याययुक्त करुणा करता है वैसे ही हम लोग आपका जो सत्य आचरण आदि नियम है उन को कदाचित अज्ञान से छोड़ देते है उसका यथायोग्य न्याय और हमारे लिए करुणा करते है॥

सरलार्थः- हे वरुणदेव! संसार में प्रजा जैसे प्रमाद करती है, वैसे ही हम भी आपके नियमों का जो कुछ भी उल्लंघन करते है, हमारे द्वारा उन किये गये प्रमादों का परिमार्जन करके आप नियम में नियोजित करो।

व्याकरणविमर्श-

- विश- विश्-शब्द का प्रथमाबहुवचन में विश रूप बनता है।
- मिनीमसि- मीञ्-धातु से लट्लकार में उत्तमपुरुषबहुवचन में यह वैदिक रूप है।
- द्यविद्यवि- द्योशब्द के सप्तम्येकवचन में द्यवि रूप। द्यवि का दो बार करने पर द्यविद्यवि रूप होता है।

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे॥2॥

पदपाठः- मा। नः। वधाय। हत्नवे। जिहीळानस्य। रीरधः॥
मा। हृणानस्य। मन्यवे॥

टिप्पणी

अन्वयः- जिहीळानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरधः। हृणानस्य मन्यवे मा (रीरधः)।

व्याख्या- हे वरुण अज्ञान से अनादर करने वाले पुरुष के लिए वध करने और किसी पर आघात पहुंचाने के लिये हमें मत प्रेरित करे। और इसी प्रकार क्रोध के निमित्त स्वय लज्जा अनुभव करने वाले को दंड देने की लिए मत उकसावे।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! हिंसा करने वाले हिंसक शास्त्र के विषयों को हमे मत कहो, इसी प्रकार हमें पुनः क्रोध का पात्र मत बनाओ।

व्याकरणविमर्शः-

- राधा साधा संसिद्धौ।
- हृणानस - हृणीङ लज्जायाम् धातु से शानचपृषोदरादित्व से अभिमतरूपसिद्धि है।।
- हत्नवे- हत्नु का चतुर्थ्येकवचन में हत्नवे रूप होता है।
- जिहीळानस्य- हेडृ-धातु से कानच्प्रत्यय लिट् लकार द्वित्वादिकार्य करने पर जिहीडान ऐसा रूप होता है। जिहीडान इसका षष्ठी एकवचन में जिहीळानस्य वैदिक रूप है। लौकिक तो जिहीडानस्य ही रूप है।
- रीरधाः- राध-धातु से लङ् मूलक लेट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में रीरधा रूप है।
- हृणानस्य- हृ-धातु से शानच्प्रत्यय से निष्पन्न हृणान का षष्ठ्येकवचन में हृणानस्य रूप होता है।

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्।
गीर्भिर्वरुण सीमहि॥3॥

पदपाठः- **वि। मृळीकाय। ते। मनः। रथीः। अश्वम्। न। समूऽदितम्।**
गीःऽभिः। वरुण। सीमहि॥

अन्वयः- वरुण! रथीः अश्वं संदितं न ते मनः मृळीकाय गीर्भिः विसीमहि।

व्याख्या- हे वरुण परमेश्वर! राजन! (रथीः) रथ का स्वामी (संदीतम) बल से खंडित थके हुए हारे हुए (अश्वं नः) घोड़े को जिस प्रकार (गीर्भिः)नाना प्रकार की मन को बाधने वाली पुचकारने वाली वाणियों से उसे अपने वश में करता है उसी प्रकार हम भी (मृळइकाय) सुख प्राप्त करने के लिए (ते) तेरे (मनः) हृदय या ज्ञान को (गीर्भिः) स्तुति द्वारा बांधते है।।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! जैसे रथस्वामी अथवा रथ का चालक, वह दूरगमन चाहता है इस प्रकार के तृणों को अश्व को देकर प्रसन्न करता है, वैसे ही हम भी आपका मन से सुखप्राप्त करने के लिए नाना प्रकार वाली स्तुति या वाणियों से प्रसन्न करते है।

व्याकरणविमर्श-

- दो अवखण्डने। निष्ठा इति क्त।
- सीमहि। षिवु तन्तुसंताने। आत्मनेपदम्। बहुलं छन्दसि से विकरण प्रत्यय का लुक्। षिञ् बन्धाने इससे भी विकरण का लुक्। दीर्घश्छान्दसः।।
- रथीः- रथशब्द से मतुप अर्थ में वैदिक में ई प्रत्यय करने पर रथीः रूप बनेगा।
- संदितम्- सम्पूर्वक दो-धातु से क्तप्रत्यय और इकारादेश होने पर संदितम् रूप होता है।
- विसीमहि- विपूर्वक षिञ्-धातु से या षिवु-धातु से लट्लकार उत्तमपुरुषबहुवचन में विसीमहि ये रूप बनता है।

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये।
वयो न वसतीरुप।।4।।

पदपाठः- **परा। हि। मे। विऽमन्यवः। पतन्ति। वस्यःऽइष्टये।**
वयः। न। वसतीः। उप।।

अन्वयः- (हे वरुण) मे विमन्यवः वस्यः इष्टये हि परापतन्ति। वयः न वसतीः उप।

व्याख्या- हे वरुण (मे) मेरे शुनःशेप (विमन्यवः) क्रोधरहित बुद्धि को (वस्यइष्टये) सबसे श्रेष्ठ वसु सबको वास देने वाले की शरण प्राप्त करने के लिए (परापतन्ति) तेरे समीप तक उड़ती-उड़ती तुझ तक पहुंचती है अथवा (वायः वसतीः न) पक्षी जिस प्रकार अपने स्थानों को छोड़कर अपने आहार को प्राप्त करने के लिए चले जाते है इसी प्रकार (विमन्यवः) विशेष ज्ञानवान पुरुष अत्यधिक धन प्राप्ति के लिए (परा एतन्ति हि) दूर देशों तक जावें।।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! मैं क्रोधसहित बुद्धिसमूह धनसमूह से युक्त जीवन को प्राप्त करने के लिए आपकी तरफ दोड़ता हुं, जिस प्रकार से पक्षी अपने निवासस्थान से दाना लेने के लिए दुसरी जगह जाते है।

व्याकरणविमर्शः-

- विमन्यवः- विगतः मन्युः याभ्यः ताः विमन्यवः इति बहुव्रीहिसमास।
- इष्टये- इष्-धातोः क्तिन्प्रत्यय से निष्पन्नइष्टिशब्द चतुर्थ्येकवचन में इष्टये रूप।
- वसतीः- वस्-धातु से अतिप्रत्यय से निष्पन्न वसति का द्वितीयाबहुवचन में वसतीः इति रूप।

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे।
मृळीकायोरुचक्षसम्।।5।।

पदपाठः- **कदा। क्षत्रऽश्रियम्। नरम्। आ। वरुणम्। करामहे॥**
मृळीकाय। उरुऽचक्षसम्॥

अन्वयः- क्षत्रश्रियम् उरुचक्षसं नरं वरुणं मृळीकाय कदा आ करामहे।

व्याख्या- अपने सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए हम कब अति बलवान समस्त प्राणियों के नेता एवं सर्वप्रष्टा वरूण का आराधन कर्म में साक्षात्कार कर सकेंगे?

सरलार्थः- शासकीय शक्ति से सुशोभित, विशाल दृष्टिवान त्रिकालदर्शी, सभी को ले जाने वाला वरुणदेव हमें कब अपने समीप लाएगा।

व्याकरणविमर्श-

- क्षत्रश्रियम्- क्षत्राणि श्रयति अथवा क्षत्रेण श्रीः यस्य तम् क्षत्रश्रियम्।
- नरम्- नृ-धातु, ऋदोरप् सूत्र से अप्प्रत्यय होने पर नरम् रूप।
- आ करामहे- आपूर्वकात् कृ-धातोः लुङ्मूलक लेट्लकार में उत्तमपुरुषबहुवचन में आकरामहे इति रूप।
- उरुचक्षसम्- उरु चक्षः यस्य तम् उरुचक्षसम् इति बहुव्रीहिसमासः।

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः।
धृतव्रताय दाशुषे॥6॥

पदपाठः- **तत्। इत्। समानम्। आशाते इति। वेनन्ता। न। प्र। युच्छतः॥**
धृतऽव्रताय। दाशुषे॥

अन्वयः- वेनन्ता समानं तत् इत् आशाते। धृतव्रताय दाशुषे न प्रयुच्छतः।

व्याख्या- जिसने वरूणाराधन कर्म का सम्पादन किया है तथा हवि प्रदान की है ऐसे यजमान को चाहने वाले मित्रावरूण देव हम ऋत्विणों से दिये हुये साधारण हवि का भक्षण करते हैं।

सरलार्थः- शुभकामनां करते हुए और व्रतधारी भी हवि प्रदान करने वाले मित्रा और वरुण उसकी हवि समानतया स्वीकार करते है। वे यजमानों के कल्याण में कभी प्रमाद नहीं करते है।

व्याकरणविमर्शः-

- आत्मनेपदि अंश्-धातु लिट्लकार के प्रथमपुरुषद्विवचन में आशाते इति रूप।
- वेनन्ता- वेन्-धातु से शतृप्रत्यय प्रथमाद्विवचन में वेनन्तौ ये वैदिक रूप होता है।
- दाशुषे- दाशृ-धातु से क्वसुप्रत्यय चतुर्थ्येकवचन में दाशुषे रूप।
- धृतव्रताय- धृतं व्रतं येन तस्मै धृतव्रताय इति बहुव्रीहिसमास।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुदियः।।7।।

पदपाठः- **वेद। यः। वीनाम्। पदम्। अन्तरिक्षेण। पतताम्।।**
वेद। नावः। समुद्रियः।।

अन्वयः- यः अन्तरिक्षेण पततं वीनां पदं वेद। समुद्रियः नावः वेद।

व्याख्या- अन्तरिक्ष से गिरते हुए, आकाशमार्ग से जाते हुए विमान और पक्षियों के मार्ग को जो जानता है वह वरुण है। तथा (समुद्रियः) समुद्र में अवस्थितवरुण(नावः) जल में चलने वाले नाव आदि के रास्ते जो जनता है वह हमारे बन्धन को छुड़ाए।। वेद। विद ज्ञाने।

सरलार्थः-जो वरुणदेव आकाशमार्ग से उड्डीयमान पक्षियों के मार्ग को जानता है तथा समुद्रमार्ग से गम्यमान नौकाओ का मार्ग जानता है, वह वरुणदेव हमें बन्धन से मुक्त करे।

व्याकरणविमर्शः-

- पतताम्- पत् धातु के शतृ प्रत्यय होने पर।
- समुद्रियः- समुद्र में भव इस अर्थ में हा प्रत्यय में इयंदिश होने पर समुद्रियः यह रूप होता है।
- वेद- विद्-ज्ञाने धातु लिट् लकार, प्रथमपुरुषैकवचन में वेद रूप।

पाठगत प्रश्न

977. वरुणसूक्त के कौन ऋषि? कौनसा छन्द? कौन देवता?
978. मिनीमसि इति पदस्य व्युत्पत्ति कैसे हुई?
979. हत्नवे इस पद की व्युत्पत्ति क्या है?
980. वेनन्तापद की व्युत्पत्ति बताएं?
981. कैसों को वरुणदेव अपने समीप ले जाते हैं?
982. हन्-धातु का क्या अर्थ होता है?
983. वसतीः इस पद की निष्पत्ति कहां से है?
984. समुद्रियः इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?
985. विद्धातु का क्या अर्थ है?
986. दाशुषे यहां षत्व किस सूत्र से हुआ?

टिप्पणी

1.1.2 व्याख्या

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते॥8॥

पदपाठः- **वेद। मासः। धृतऽव्रतः। द्वादश। प्रजाऽवतः॥**
वेद। यः। उपऽजायते॥

अन्वयः- धृतव्रतः प्रजावतः द्वादश मासः वेद। यः उपजायते वेद।

व्याख्या- (धृतव्रतः) स्वीकृत किया है कर्मविशेष को जिसने यथोक्तमहिमोपेतो वरुणः प्रजावतः तदा तदोत्पद्यमानप्रजायुक्तान् द्वादश मासः चौत्रादीन् फाल्गुनान्तान् वेद जानाति। यः त्रयोदशोऽधिकमासः उपजायते संवत्सरसमीपे स्वयमेवोत्पद्यते तमपि वेद। वाक्यशेषः पूर्ववत्॥ मासः। द्वादश। द्वौ च दश च इति द्वन्द्वः।

सरलार्थ- व्रतधरी वरुण प्रजायुक्त 12 माहों को जानता है और जो वर्ष से अधिक मास है उनको भी जानता है।

व्याकरणविमर्श-

- प्रजावतः- प्रजाशब्द का मतुप्प्रत्यय, षष्ठ्येकवचन में प्रजावतः ये रूप।
- उपजायते- उपपूर्वक जन्-धतु से लट्लकार प्रथमपुरुषैकवचन में उपजायते रूप।

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः।
वेदा ये अध्यासते॥9॥

पदपाठः- **वेद। वातस्य। वर्तनिम्। उरोः। ऋष्वस्य। बृहतः॥**
वेद। ये। अधिऽआसते॥

अन्वयः- उरो ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिं वेद। ये अधि आसते वेद।

व्याख्या- उरोः विस्तीर्णस्य ऋष्वस्य दर्शनीयस्य बृहतः गुणैरधिकस्य वातस्य वायोः वर्तनि मार्गं वेद वरुणो जानाति। ये देवाः उपरि तिष्ठन्ति तानपि वेद जानाति॥

सरलार्थः- वरुणदेव विस्तृत, व्यापक और दर्शनीय तथा गुणयुक्त महान वायु के अर्थात् अन्तरिक्ष के मार्ग को जानता है और भे जो वहां निवास करता है, उसको भी जानता है।

व्याकरणविमर्श-

- बृहतः- बृहत्-शब्द का षष्ठयेकवचन में बृहतः रूप है।
- वर्तनिम्- वृत्-धातु से अनिप्रत्यय में वर्तनिम् रूप है।
- ऋष्वस्य- ऋषी-धातु से मतुपअर्थ में क्वन्प्रत्यय षष्ठ्येकवचन में ऋष्वस्य रूप है।

- अध्यासते- आत्मनेपदि आस्-धातु से लट्लकारप्रथमपुरुषबहुवचन में अध्यासते रूप है।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३ऽस्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः॥10॥

पदपाठः- **नि। ससाद। धृतव्रतः। वरुणः। पस्त्यासु। आ॥**
साम्ऽराज्याय। सुऽक्रतुः॥

अन्वयः- धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः आ साम्राज्याय प्रत्यासु निषसाद।

व्याख्या- धृतव्रतः पूर्वोक्तः वरुणः पस्त्यासु देवीषु प्रजासु आ नि षसाद आगत्य निषण्णवान्। किमर्थम्। प्रजानां साम्राज्यसिद्ध्यर्थं सुक्रतुः शोभनकर्मा।नि षसाद। सदिरप्रतेः (पा. सू. 8.3.66) इति षत्वम्। साम्राज्याय। सम्राजो भावः साम्राज्यम्। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः (पा. सू. 5.1.124) इति ष्यञ्।

सरलार्थः- व्रतधारी तथा शोभितकर्मकारी वरुण सब और से शासन के लिए अपने जलगृह में उपविष्ट है।

व्याकरणविमर्श-

- निषसाद- निपूर्वक सद्-धातु से लिट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में निषसाद रूप।
- सुक्रतुः- शोभनः क्रतुः यस्य सः सुक्रतुः इति बहुव्रीहिसमासः। सुपूर्वकात् कृ-धातु से अतुप्रत्यय सुक्रतुः रूप।
- साम्राज्याय- सम्राजो भावः। सम्राज्शब्द के ष्यञ्प्रत्यय, चतुर्थ्येकवचन में साम्राज्याय रूप।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा॥11॥

पदपाठः- अतः। विश्वानि। अद्भुता। चिकित्वान्। अभि। पश्यति॥
कृतानि। या। च। कर्त्वा॥

अन्वयः- अतः चिकित्वान् विश्वानि या कृतानि च कर्त्वा अद्भुता अभिपश्यति।

व्याख्या- अतः अस्मात् वरुणात् विश्वानि अद्भुता सर्वाण्याश्चर्याणि चिकित्वान् प्रज्ञावान् अभि पश्यति सर्वतोऽवलयति या कृतानि यान्याश्चर्याणि पूर्वं वरुणेन सम्पादितानि। चकारात् अन्यानि यान्याश्चर्याणि कर्त्वा इतः परं कर्तव्यानि तानि सर्वाण्यभिपश्यतीति पूर्वत्रान्वयः।

सरलार्थ-उसी स्थान प्रज्ञावान् वरुणदेवसमस्त कर्म तथा किये जाने वाले कर्म को सब और से देखता है।

व्याकरणविमर्श-

- चिकित्वान्- चिकित्वस्शब्द के प्रथमैकवचन में चिकित्वान् रूप।

टिप्पणी

- विश्वानि- विश्वशब्द के नपुंसकलिङग, द्वितीयाबहुवचन में विश्वानि रूप।
- कर्त्वा- कृ-धातु से त्वन्प्रत्ययकर्त्वा रूप।
- अभिपश्यति- अभिपूर्वक दृश्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में अभिपश्यति रूप।

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्र ण आयूंषि तारिषत्॥12॥

पदपाठः- **सः। नः। विश्वाहा। सुऽक्रतुः। आदित्यः। सुऽपथा। करत्॥**
प्र। नः। आयूंषि। तारिषत्॥

अन्वयः- सुक्रतुः स आदित्यः नः विश्वाहा सुपथा करत्। नः आयूंषि प्रतारिषत्।

व्याख्या- सुक्रतुः शोभनप्रज्ञः सः आदित्यः वरुणः विश्वाहा सर्वेष्वहःसु नः अस्मान् सुपथा शोभनमार्गेण सहितान् करत् करोतु। किं च नः अस्माकम् आयूंषि प्र तारिषत् प्रवर्धायतु।।

सुपथा।

सरलार्थः- शोभितकर्मकारी वह अदितिपुत्र वरुण हमें सदा ही उत्तममार्ग में संयुक्त करते हुए हमारी आयु बढ़ाये।

व्याकरणविमर्श-

- आदित्यः- अदितिशब्द से ण्यप्रत्यय प्रथमैकवचन में आदित्यः रूप।
- सुपथा- शोभनश्चासौ पन्थाः सुपन्थाः तेन सुपथा।
- करत्- कृ-धातु से लुङमूलक लोट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में करत् इति रूपम्।
- प्रतारिषत्- प्रपूर्वकतृ-धातु से णिच्प्रत्ययसे लुङमूलक लेट्लकार, प्रथमपुरुषैकवचन में प्रतारिषत् रूप।

बिभ्रद्वापिं हिरण्ययं वरुणो वस्तनिर्णिजम्।
परि स्पशो नि षेदिरे॥13॥

पदपाठः- **बिभ्रत्। द्वापिम्। हिरण्ययम्। वरुणः। वस्त। निःऽनिजम्॥**
परि। स्पशः। नि। सेदिरे॥

अन्वय- हिरण्यं द्वापिं बिभ्रत् वरुणः निर्णिजम् वस्त। स्पशः परि निषेदिरे।

व्याख्या- हिरण्यं- सुवर्णमय, द्वापिं -कवच को, बिभ्रत् -धारण करने वाला वरुण, निर्णिजं पुष्ट स्वशरीर को – वस्त- आच्छादित करता है। स्पशः- हिरण्यस्पर्शी रश्मियों को चारों और फैलाता है।

टिप्पणी

सरलार्थः- स्वर्णकवचधारी वह वरुणदेव अपने पुष्ट शरीर को ढकता है। उसकी सुंदर स्पर्शी किरणसमूहको सर्वत्रा फैलता है।

व्याकरणविमर्शः-

- बिभ्रत्- भृ-धात से शतृप्रत्य से निष्पन्न बिभ्रत्-शब्द का प्रथमैकवचन में बिभ्रन् ये वैदिक रूप है।
- द्रापिम्- द्रापिशब्द का द्वितीयैकवचन में द्रापिम् रूप।
- निर्णिजम्- निर्पूर्वक णिर्जि-धातु से कप्रत्यय, निर्णिजशब्द का द्वितीयैकवचन में निर्णिजम् रूप।
- निषेदिरे- निपूर्वक सद्-धातु ससे लिट्लकार में आत्मनेपद प्रथमपुरुषबहुवचन में निषेदिरे रूप।

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्।
न देवमभिमातयः॥14॥

पदपाठः- **न। यम्। दिप्सन्ति। दिप्सवः। न। द्रुह्वाणः।**
जनानाम्। न। देवम्। अभिऽमातयः॥

अन्वयः- दिप्सवः यं देवं न दिप्सन्ति, जनानां द्रुहाणः न, अभिमातयः न।

व्याख्या-यम्- जिस, देवम्- दानवीर परमेश्वर और विजीगीशु राजा को, दिप्सवः- हिंसाशील पुरुष, न दिप्सन्ति – मारना भी नहीं चाहते है और, जनान द्रुह्वाणः- जंतु और सब मनुष्यों के द्रोह्कारी लोग भी जिसका द्रोह नहीं कर पाते और जिसको, अभिमातयः- अभिमानी शत्रु भी परास्त नहीं क्र सकते है वही परमेश्वर व राजा न्यायकारी पद पर स्थित वरुण है॥

सरलार्थ- हिंसक लोग भी वरुणदेव को नहीं मार सकते है। सामान्यमनुष्यों में द्रोहिव्यक्ति भी जिससे द्रोह नहीं क्र सकता है और पापी भी जिसकी हानि नहीं कर सकते है वह वरुण है।

व्याकरणविमर्श-

- दिप्सन्ति- दम्भ्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषबहुवचन में दिप्सन्ति रूप।
- द्रुह्वाणः- द्रुह्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय से निष्पन्न द्रुह्नशब्द का प्रथमाबहुवचन में द्रुह्वाणः रूप।
- अभिमातयः- मीञ्-धातु से अभिभूय मिनाति हिनस्ति इस अर्थ में क्तिन्प्रत्यय से अभिमाति रूप होता है। अभिमातिशब्द का प्रथमाबहुवचन में अभिमातयः रूप है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

987. व्रतधारी वरुणकिसप्रकार के मासों को जानता है?

988. उपजायते इस पद के निष्पत्ति कहाँ से हुई?

989. वरुणदेव: किसके मार्ग को जानते है?

990. द्रुह्वाण: इस पद के निष्पत्ति कहाँ से है?

991. निषसाद यहाँ षत्व किस सूत्र से है?

992. निर्णिजम् इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

993. द्राधातु का क्या अर्थ है?

994. करत् इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?।

995. कर्त्वा इति पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

996. कितधातु का क्या अर्थ है?

10.1.3 व्याख्या

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या।
अस्माकमुदरेष्वा॥15॥

पदपाठ:- **उत। य:। मानुषेषु। आ। यश:। चक्रे। असामि।**
आ। अस्माकम्। उदरेषु। आ॥

अन्वय:- उत य: मानुषेषु यश: आचक्रे, असामि आ, अस्माकम् उदरेषु आ।

व्याख्या- उत-और, य: – जो परमेश्वर सूर्य और मेघ, मानुषेषु-समस्त मननशील पुरुषों के निमित्त, असामि-पूर्णरूप से, यज्ञ:- यज्ञ और अन्न, आ चक्रे-प्रदान करता है और, अस्माकम् – हमारे, उदारेषु – पेटों को भरने के लिए, यश:- अन्न, आ चक्रे- सर्वत्र पैदा करता है वह वरुण है।

सरलार्थ:- जो वरुणदेव ने मनुष्यों के लिए अन्न उत्पादित ही नहीं बल्कि अन्न को सम्पूर्णतया उत्पादित किया तथा हमारे उदर में अन्न को सभी प्रकार से पाचन के लिए शक्ति दे।

व्याकरणविमर्श:-

- मानुषेषु- मनोरपत्यम् इस अर्थ में मनोर्जातावञ्यतौ पुक् इस सूत्र से मनुशब्द से

टिप्पणी

अञ्प्रत्ययऔर षुगागम से मानुषशब्दनिष्पन्न है। मानुषशब्द के सप्तमीबहुवचन में मानुषेषु रूप।

- चक्रे- कृ-धातु से लिट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में चक्रे रूप।

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥16॥

पदपाठः- **परा। मे। यन्ति। धीतयः। गावः। न। गव्यूतीः। अनु॥**
इच्छन्तीः। उरुऽचक्षसम्॥

अन्वयः- उरुचक्षसम् इच्छन्तीः मे धीतयः गव्यूतीः अनु गावः न परायन्ति।

व्याख्या- उरुचक्षसं बहुभिर्द्रष्टव्यं वरुणम् इच्छन्तीः मे धीतयः शुनःशेपस्य बुद्धयः परा यन्ति पराङ्मुखा निवृत्तिरहिता गच्छन्ति। तत्र दृष्टान्तः। गावो न। यथा गावः गव्यूतीरनु गोष्ठानि अनुलक्ष्य गच्छन्ति तद्वत्।।

सरलार्थः-सभी के द्वारा दर्शनयोग्यतथा व्यापकदृष्टि वाले वरुण के दर्शन के लिए कामना रखने वाला मेरा बुद्धिसमूह या चेष्टा आदि भावनासमूह उसकी ओर जाता है, जिस प्रकार सायंकाल में गाये उनके लक्ष्य स्थान गोशाला की और दोड़कर जाती है।

व्याकरणविमर्श-

- धीतयः- ध्या-धातु से क्तिन्प्रत्यय यकार को वैदिक सम्प्रसारण करने पर इकार आकार के पूर्वरूप में और इकार के दीर्घ होने पर निष्पन्न धीतिशब्द का प्रथमाबहुवचन में धीतयः रूप होता है।
- गव्यूतीः- गोपूर्वपदयू-धातु से क्तिन्प्रत्यय, गोर्यूतौ छन्दसि सूत्र से ओकार के स्थान में अवादेश निष्पन्नगव्युतिशब्द के प्रथमाबहुवचन में गव्यूतीः रूप बनता है।
- इच्छन्तीः- इष्-धातु में शतृप्रत्यय और ङीप्प्रत्यय होने पर प्रथमाबहुवचन में इच्छन्तीः रूप बनता है।
- उरुचक्षसम्- उरुभिः चक्षसं यस्य तम् उरुचक्षसम् इति बहुव्रीहिसमास।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्।
होतेव क्षदसे प्रियम्॥17॥

पदपाठः- **सम्। नु। वोचावहै। पुनः। यतः। मे। मधु। आऽभृतम्॥**
होताऽइव। क्षदसे। प्रियम्॥

अन्वयः- यतः मे मधु आभृतं पुनः नु संवोचावहै। होता इव प्रियं क्षदसे।

व्याख्या- यतः- क्योकि, मे- मुझे, मधु- अतिप्रिय ज्ञान रस विद्वानों से प्राप्त हुआ है और हे शिष्य! तू उस, प्रियम्- प्रिय त्रिप्तिकर ज्ञानराशि को, होता इव – यज्ञ कर्ता

टिप्पणी

विद्वान के समान ही, क्षदसे- अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए करता है इसलिए हम दोनों, सं वोचावाहे – भली प्रकार परस्पर उस ज्ञान को वचन – प्रतिवचन से उपदेश दे और ग्रहण करे।।

सरलार्थः-क्योंकि इस यज्ञ में मेरे द्वारा मधुरहवि आपके लिए सम्पादित है। जिससे पुनः हम दोनों परस्पर प्रेमभावना से उपदेश करे। आप होता के सामान उस प्रियहवि का भक्षण करते है।

व्याकरणविमर्शः-

- आभृतम्- आपूर्वक भृ-धातु से क्तप्रत्यय में नपुंसकमें आभृतम् रूप।
- वोचावहै- ब्रू-धातु से लुङ्लकार उत्तमपुरुषद्विवचन में वोचावहै रूप।
- यतः- यच्छब्द का तसिल्प्रत्यय होने पर तकार को अकारादेश और पररूप होने पर यतःरूप बनता है।
- होता- हू-धातु से तृच्प्रत्यय से निष्पन्न होतृशब्द का प्रथमैकवचन में होता रूप है।
- प्रियम्- प्री-धातु से कप्रत्यय ईकार के स्थान पर इयङादेश, नपुंसक में प्रियम् रूप।
- क्षदसे- क्षद्-धातु से आत्मनेपद में लट्लकार में मध्यमपुरुषैकवचन क्षदसे रूप होता है।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः॥18॥

पदपाठः- **दर्शम्। नु। विश्वऽदर्शतम्। दर्शम्। रथम्। अधि।**
क्षमि। एताः। जुषत। मे। गिरः॥

अन्वयः- विश्वदर्शतं नु दर्शम् अधि क्षमि रथं दर्शम्। एताः मे गिरः जुषत।

व्याख्या- विश्वदर्शतं सर्वैर्दर्शनीयम् अस्मदनुग्रहार्थमत्राविर्भूतं वरुणं दर्शं नु अहं दृष्टवान् खलु। क्षमि क्षमायां भूमौ रथं वरुणसंबन्धिनम् अधि दर्शम् आधिक्येन दृष्टवान् अस्मि। एताः उच्यमानाः मे गिरः मदीयाः स्तुतीः जुषत वरुणः सेवितवान्।।

दर्शम्। दृशेः इरितो वा (पा. सू. 3.1.57) इति च्लेः अङादेशः। ऋदृशोऽङि गुणः (पा. सू. 7.4.16) इति गुणः। विश्वदर्शम्। दृशेः भृमृदृशि... (उ. सू. 3.390) इत्यादिना अवच्प्रत्ययान्तो दर्शतशब्दः। विश्वं दर्शनीयमस्येति बहुव्रीहिः। बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्। क्षमि।

सरलार्थः- सम्पूर्णविश्व द्वारा दर्शन के योग्य उस वरुण को निश्चय से मैने देखा है। भूमि पर उस वरुण का रथ मैंने देखा। उस वरुणदेव नेमेरी ये स्तुतिस्वीकार की।

व्याकरणविमर्शः-

- दर्शम्- दृश्-धातु से लुङ्मूलक लेट्लकार में उत्तमपुरुषैकवचन में दर्शम् रूप।
- विश्वदर्शतम्- विश्वपूर्वपद दृश्-धातु से अतच्प्रत्यय, नपुंसक में विश्वदर्शतम् रूप होता है।
- जुषत- जुष्-धातु से लङ्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में जुषत रूप है।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके।।19।।

पदपाठः- **इमम्। मे। वरुण। श्रुधि। हवम्। अद्य। च। मृळय।**
त्वाम्। अवस्युः। आ। चके।।

अन्वयः- वरुण! मे इमं हवं श्रुधि, अद्य च मृळय। अवस्युः त्वाम् आचक्रे।

व्याख्या- वरुणप्रघासेषु इमं मे वरुण इति वारुणस्य हविषः अनुवाक्या। पञ्चम्यां पौर्णमास्याम् इति खण्डे सूत्रितम्- इमं मे वरुण श्रुधि तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः (आश्व. श्रौ. 2.17) इति।।

हे वरुण मे- मेरा, इमं-ये, हवम्- आह्वान को, श्रुधि-सुनो। च – और, अद्य- इस दिन में ही, मृळय-हमे सुख दे। अवस्युः- रक्षण का इच्छुक, मै, त्वां-वरुण के सम्मुख, चक्रे-प्रार्थना करता हूँ या स्तुति करता हूँ।।

सरलार्थ- हे वरुणदेव! मेरा ये आह्वानसुनो और मुझे सुखी करो। मैं संरक्षण का अभिलाषी होकर आपका आह्वान करता हूँ।

व्याकरणविमर्श-

- श्रुधि- श्रु-धातु से लोट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में वैदिकरूप है ये।
- हवम्- ह्वे-धातु से अप्प्रत्यय, वकार का सम्प्रसारण, सन्धिकार्य और अवादेश करने पर नपुंसक में हवम् रूप।
- मृळय- मृळ्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुषैकवचन में मृळय रूप।
- अवस्युः- अवस्-शब्द से क्यच्प्रत्यय और उप्रत्यय करने पर अवस्युः रूप बनता है।
- चके- कै-धातु से लिट्लकार, उत्तमपुरुषैकवचन में चके रूप।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि।।20।।

पदपाठः- **त्वम्। विश्वस्य। मेधिर। दिवः। च। ग्मः। च। राजसि।**
सः। यामनि। प्रति। श्रुधि।।

टिप्पणी

अन्वयः- मेधिर। त्वं दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि। सः यामनि प्रतिश्रुधि।

व्याख्या- हे मेधिर-मेधावि वरुण, त्वं- आप दिवश्च- द्युलोक से, ग्मश्च- भूलोक के और सम्पूर्ण जगत के मध्य भाग में, राजसि- दीप्त होते है। सः तादृशः त्वं यामनि क्षेमप्रापणे अस्मदीये प्रति श्रुधि प्रतिश्रवणम् आज्ञापनं कुरु। रक्षिष्यामीति प्रत्युत्तरं देहीत्यर्थः।।

सरलार्थः- हे मेधावी वरुणदेव! आप द्युलोक से पृथिवीलोक तक सम्पूर्ण जगत् के मध्यभाग में प्रकाशित होते है। इसीप्रकार वरुणदेवता आप हमारे मार्ग अर्थात् जीवनरूपयात्रा के मार्ग में वचन दो कि आप मेरी रक्षा करेंगे।

व्याकरणविमर्श-

- मेधिर- मेधशब्द में इरच्प्रत्यय होने से मेधिर रूप।
- दिवः- दिव्-धातु से क्विप्प्रत्यय से निष्पन्न दिव्शब्द का षष्ठ्येकवचन में दिवः रूप।
- राजसि- राज्-धातु से लट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में राजसि रूप।
- यामनि- या-धातु से मनिन्प्रत्यय, सप्तम्येकवचन में यामनि रूप.

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यम चृत।
अवाधमानि जीवसे॥21॥

पदपाठः- उत्। उत्ऽतमम्। मुमुग्धिः। नः। वि। पाशम्। मध्यमम्। चृत॥
अव। अधमानि। जीवसे॥

अन्वयः- नः उत्तमं पाशम् उत् मुमुग्धि, मध्यमं विचृत, जीवसे अधमानि अव।

व्याख्या- नः अस्माकम् उत्तमं शिरोगतं पाशम् उत् मुमुग्धि उत्कृष्य मोचय। मध्ययम् उदरगतं पाशं वि चृत वियुज्य नाशय। जीवसे जीवितुम् अधमानि मदीयान् पादगतान् पाशान् अव चृत अवकृष्य नाशय। उत्तमम्। मुमुग्धि। मुच्लृ मोक्षणे। बहुलं छन्दसि इति विकरणस्य श्लुः। द्विर्भावः। हलादिशेषः। हुझल्भ्यो हेर्धिः (पा. सू. 6.4.101) इति हेर्धिरादेशः। चृत। चृती हिंसाग्रन्थनयोः। लोटो हिः। तुदादिभ्यः शः, अतो हेः इति हेर्लुक्। जीवसे। जीव प्राणधारणे।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! आप हमारे ऊपर जो बंधन है उनको हटाकर नाश कर दो। इन बीजों के बन्धन को पृथक्तया निकालकर नाश करो और हमारे जीवन के लिए निम्न बन्धन को भी हटाकर नाशकर दो।

व्याकरणविमर्श-

- उत्तमम्- उत्-धातु से तमप्प्रत्यय, द्वितीयैकवचन में उत्तमम् रूप।
- मुमुग्धि- मुच्-धातु से लिट्मूलक लोट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में मुमुग्धि रूप।
- पाशम्- पश्-धातु से घञ्प्रत्ययसे निष्पन्नपाशशब्द का द्वितीयैकवचन में पाशम् रूप।

- चृत- चृत्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुषैकवचन में चृत रूप।
- जीवसे- जीव-धातु से तुमुन्प्रत्यय के अर्थ में वैदिक असेप्रत्यय से जीवसे रूप।

पाठगत प्रश्न

997. वरुण किसको शक्ति देता है?

998. मानुषशब्द कैसे बना?

999. इच्छती: यहां छत्व किस सूत्र से हुआ?

1000. होता पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

1001. मुमुग्धि पद की निष्पत्ति किससे हुई?

1002. अवस्यु: पद की निष्पत्ति कहां से हुई?

1003. हि को धि आदेश किस सूत्र से हुआ?

1004. चृतीधातु का क्या अर्थ है?

1005. गव्यूती: पद की निष्पत्ति कहां से हुई?

1006. मेधिर पद की निष्पत्ति कहां से हुई?

10.2 वरुणसूक्तसार

ऋग्वेद के प्रथममण्डल के पञ्चविंशं (25वें) सूक्त को वरुणसूक्त कहते है। यहाँ कुल 11 मन्त्र हैं। शुन:शेप: ऋषि इस सूक्त के द्रष्टा है। वरुणही देवता है। छन्द गायत्री है। इस सूक्त में जल का देवता वरुण के प्रति मानवों की प्रार्थनाओ का वर्णन है, न केवल प्रार्थना अपितु यहाँ विविधप्रकार से वरुणदेवता के लिए प्रशंसा भी है। यथा- अपराध करने पर बुद्धि से क्षमा प्रार्थना करते है, उसके बाद स्वयं की इच्छाओं धनलोभादियों को अपराध स्वीकार किया गया है और फिर वरुणदेवता को शक्तिवर्णन से और स्तुतिमाध्यम से प्रसन्न करते है। इसप्रकार यहाँ क्रम से वरुणदेवता की सन्तोषपूर्वक प्रार्थना की जाती है।

प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि हे वरुणदेव! जैसे विविध यज्ञादि अनुष्ठान में मनुष्यों का प्रमाद होता है उसी प्रकार आपके पूजार्चनादि विधियों में हम शंकित होते है अत: हमें क्षमा करो। उसके बाद प्रार्थना की गई है की आप क्रोधवस्था में भी हमारे प्रति क्रोध मत करो। और भी -हे वरुणदेव! आपके शत्रुओ के प्रति प्रयोग किये गये अस्त्राहमे मत पदिखाओ और क्रोधवस्था में भी हमारे प्रति कृपा करो। उसके बाद कहते है कि

जिस प्रकार सारथि थके हुए अश्व की परिचर्या करता है उसी प्रकार हम भी आपके चित्त को प्रसन्न करने के लिए स्तुत्यादि करते है। और हमारी बुद्धि सदैव धनादिवस्तु के प्रति दोड़ती है अतः हमें क्षमा करो।

उसके बाद यहाँ प्रार्थना करते है कि कब सर्वद्रष्टा वरुणदेव कल्याण के लिए यज्ञस्थलादि पर आएगा। और व्रतधारणद्वारा आहुत हविर्द्रव्य वरुणदेव स्वीकार करके उसके बाद हम यजमानों रक्षा करेगा।

इसके बाद यहाँ वरुणदेवता का माहात्म्य का वर्णन करते है। वहां कहते है कि वरुणदेव आकाश में उड्डीयमान पक्षियों के मार्ग तथा समुद्र में नौकाओ के मार्ग को जानता है। प्रजा का धारक वरुणदेव द्वादशमास को जानाति और उसके साथ ही त्रयोदश(13वे) पुरुषोत्तममास को भी जानता है। वह स्वर्ग के सभी देवों को भी जानता है, और प्रजापालन के लिए स्राम्राज्यस्थापना में सदैव तत्पर रहता है। वह अद्भुतकर्मादि विषयों को भी जानता है। भूलोक और द्युलोक के तथा समस्तविश्व के अधिकारी वरुण ने ही मनुष्यों के लिए शस्यभण्डार किये है और उसी ने ही मनुष्यों के उदर में पाचनसामर्थ्य स्थापित किया। वरुणदेव का इतना सामर्थ्य है कि भयङ्कर पापियों और द्वेष चाहने वाले शत्रुओ द्वारा भी अप्राप्य है।

वरुणदेव की स्तुति के बाद प्रार्थाना करते है। यथा- हमें पाश से मुक्तिप्रदान करो। हमारा आह्वान स्वीकार करो, यज्ञस्थलादि में अग्निदेव के समान हवि स्वीकार करो। हे अदितिपुत्र वरुणदेव! हमारी प्रार्थना सुनों और सुनकर हमे सुख प्रदान करो। हमे सदा श्रेष्ठमार्ग में ही प्रेरित करो और हमारी आयु को वर्धन करो।

10.3 वरुणदेवतास्वरूपम्

वरुणदेव ऋग्वैदिक आर्यो के अतीव प्रिय है। ऋग्वेद में वरुण का स्वरूप सम्पूर्णरूप से द्वादश12 सूक्त में प्रतिपादित है। और आंशिकरुप से चतुर्विंशति(24)सूक्त में स्तुति की गई है।

वरुणदेव की मानवाकृति अतीव सुन्दर तथा मोहनीय है। इसका मुखमण्डल अग्नि के तुल्य है और नेत्र सूर्यतुल्य है।

अग्नेरनीकं वरुणस्य। (7.88.2)
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। (1.155.1)

ये वरुणदेव अत्यन्तदूरस्थित होते हुए भी वस्तु में देखा जा सकता है। इसे सहस्रनेत्रवाला भी कहते है। इसका शरीर सुगठित और मांसल था। सुरक्षा और सौन्दर्य के लिए यह स्वशरीर पर स्वर्णिमकवच और स्वर्णिमवस्त्र को धारण करता है। इसका रथ सूर्य के सदृश द्युतिवान् देखने वालों में भी आश्चर्य उत्पन्न करता है। सुन्दर अश्व से युक्त अपने रथ पर बैठकर यह अपनी बाहू को हिलाते हुए और दृष्टि का सर्वत्र प्रसार करते हुए

भूलोक के सूक्ष्म व्यवहार को और प्रजा के अन्तस्थित भाव को भी जनता है। यह कभी स्वतन्त्ररूप से कभी मित्रदेव के साथ विश्व का राजा कहा जाता है।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा।। (1.24.8)

सहस्रस्तम्भ से युक्तऔर सहस्रद्वार से युक्तस्वर्णिम महल में ये निवास करता है। यही स्थित होकर वह समग्र भुवन को निरीक्षण सम्पादित करता है। इसके प्रासाद के चारों और गुप्तचर सदैव विचरण करते है। वरुण को सम्राट्, स्वराट् इत्यादि उपाधि से भी विभूषित किया जाता है। शस्त्रों का अधिपति होने से ये क्षत्रिय भी कहाता है। इसकी अनिर्वचनीयशक्ति का नाम माया है, जिससे यह इस जगत का सचालन करता है। वर्षा से यह अन्नं उत्पन्न करता है तथा प्रकाश के निमित्त सूर्य को मध्यगगन में भेजता है इसी ने सूर्य के चलने के लिए अन्तरिक्षलोक में सुविस्तीर्ण मार्ग बनाया।

सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।। (ऋग्वेद1.28.8)

इसकी आज्ञा अतीव कठिन होती है फिर भी कोई इसकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करता है। यह वरुण कठिन नियमों का पालन करता है इसलिए इसे धृतव्रत भी कहा जाता है। इसप्रकार इस विश्व का अणु से भी अणु पदार्थ तथा महान् से भी महान पदार्थ सभी वरुणदेव की इच्छा से ही अपनी सत्ता और स्थिति को धारण करते है। इसी लिए ये वरुण कल्याणकारी है।

पाठसार

वरुणसूक्त ऋग्वेद के प्रथममण्डल का चतुर्विंशति24वां सूक्त है। इस सूक्त का शुन:शेप: ऋषि और वरुणदेव है। इस सूक्त में त्रिष्टुप् और गायत्री छन्द है। गायत्रीछन्द तृतीय-चतुर्थ-पञ्चममन्त्रों में है। यहाँ विशेषतया वरुणदेव का स्वरूप तथा उसके कार्य का वर्णन है। प्रमाद न करें मनुष्य, इसके लिए वरुणदेव से प्रार्थना करते है। उनके प्रमादों का परिमार्जन करके वरुणदेव नियम से उन्हें पूर्ण करे ये आशा करते है। सुखप्राप्त करने के लिए भी वरुणदेव से प्रार्थना करते है। यथा रथस्वामी अथवा रथ को जो चलाता है वह दूर जाकर तृण दिखाकर अश्व को प्रसन्न करता है, उसी प्रकार हम भी मानसिक सुख प्राप्त करने के लिए वरुणदेव की नाना प्रकार से स्तुति से प्रसन्न करते है। कदाचित् सुखप्राप्ति और कदाचित् शोभा प्रदान करने केलिए भी अपि वरुणदेव की स्तुति करते है। वरुणदेव आकाशमार्ग से उड्डीयमानपक्षियों के मार्ग को भी जानता है तथा समुद्रमार्ग से गम्यमान नौकाओ के मार्ग को भी जानता है, इससे वह वरुणदेव हमें बन्धन से मुक्त करे। वरुणदेव का स्थानजलगृह है। वो वहां बैठकर इस संसार के सभी कार्य देखता है और विचार करता है। आयु के वर्धन केलिए भी कभी कभी वरुणदेव की स्तुति यहाँ की जाती है। और कहीं-कहीं वरुणदेव चिकने और चमकीले विशिष्टशरीर का वर्णन भी करते है। इस सूक्त के प्राय: अन्तिमभाग में वरुणदेव की महिमा वर्णित है। उसकी

टिप्पणी

अन्नप्रदान के रूप की महिमा, सत्मार्ग में प्रेरित की महिमा और शरीर की पुष्टी के लिए महिमा यहाँ इस सूक्त में वर्णित है। अन्तिमभाग में वरुणदेव के रथ के वर्णन किया है। यजमान ने उसका दर्शन किया। सम्पूर्णविश्व के देखने के योग्य उस वरुणदेव के निश्चय ही दर्शन उचित है स्तुति द्वारा द्यउसके बाद सुखप्राप्ति और अपनी रक्षार्थ स्तुति की गई है। हमारे सभी विनाश से अपने जीवन की रक्षा के लिए यह वरुणसूक्त है। ये ही माहात्म्य है वरुणसूक्त का।

पाठान्त प्रश्न

1007. वरुणसूक्त का सार लिखो।

1008. यच्चिद्धि... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1009. मा नो... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1010. कदा क्षत्रश्रियम्... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1011. तदित्समान..... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1012. दर्श नु..... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1013. इमं मे... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1014. त्वं विश्वस्य... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1015. उदुत्तमं मुमुग्धि... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरसंकेत -1

1016. शुनःशेपः ऋषि, वरुण देवता, गयत्री छन्द।

1017. मीञ्-धातु लट्लकार, उत्तमपुरुषबहुवचन में वैदिक रूप।

1018. हत्नु का चतुर्थ्येकवचन में हत्नवे रूप।

1019. वेन्-धातु से शतृप्रत्यय में प्रथमाद्विवचन का वेनन्तौ ये वैदिकरूप है।

1020. शासकीयशक्ति से सुशोभित, विशालदृष्टि वाला त्रिकालदर्शि, सभी का नेता वरुणदेव उसके समीप आएगा।

1021. हन्-धातु से हिंसा ओए गमन अर्थ है।

1022. वस्-धातु से अतिप्रत्यय से निष्पन्न वसति इसका द्वितीयाबहुवचन में वसतीः रूप।

1023. समुद्रे भव इत्यर्थे घप्रत्यय, इयादेश से समुद्रियः रूप बनता है।

1024. ज्ञान।

1025. शासिवसिघसीनां च।

उत्तर संकेत - 2

1026. व्रतधारी वरुण प्रजायुक्त द्वादश12 प्रकार के महीनों को जनता है।

1027. उपपूर्वक जन्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में उपजायते ये रूप बनता है।

1028. महत् वायु के अर्थात् अन्तरिक्ष के मार्गों को जानता है।

1029. द्रुह्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय होने पर निष्पन्न द्रुह्शब्द का प्रथमाबहुवचन में द्रुह्णाणः रूप होता है।

1030. सदिरप्रतेः इस सूत्र से षत्व।

1031. नि पूर्वक णिजिर्-धातु से कप्रत्यय होने पर निर्णिजशब्द का द्वितीयैकवचनमें निर्णिजम् रूप।

1032. कुत्सा और गति।

1033. कृ-धातु से लुङमूलक लोट्लकार के प्रथमपुरुषैकवचन में करत् रूप।

1034. कृ-धातु से त्वन्प्रत्यय करके कर्त्वा रूप बनता है।

1035. ज्ञान।

उत्तरसंकेत - 3

1036. अन्न के सभी प्रकार से पाचन के लिए शक्ति दी।

1037. मनोरपत्यम् इस अर्थ में मनोर्जातावञ्यतौ पुक् इस सूत्र से मनुशब्द से अञ्प्रत्यय और षुगागम होने पर मानुषशब्दनिष्पन्न हुआ ।

1038. इषुगमियमां छः।

1039. हू-धातु से तृच्प्रत्यय होने पर निष्पन्न होतृशब्द के प्रथमैकवचन में होता रूप बनता है।

टिप्पणी

1040. मुच्-धातु से लिट्मूलक लोट्लकार के मध्यमपुरुषैकवचन में मुमुग्धि रूप।

1041. अवस्-शब्द में क्यच्प्रत्यय और उप्रत्यय करने पर अवस्यु रूप बनता है।

1042. हुझल्भ्यो हेर्धिः इस सूत्र से।

1043. हिंसा और ग्रन्थनम्।

1044. गोपूर्वपद यू-धातु से क्तिन्प्रत्यय होने पर गोर्यूतौ छन्दसि सूत्र से ओकार के स्थान पर अवादेश से निष्पन्न गव्युतिशब्द के प्रथमाबहुवचन में गव्यूतीः रूप बनता है।

1045. मेधाशब्द से इरच्प्रत्यय करने पर मेधिर रूप बनता है।

दसवां पाठ समाप्त